नवंबर १९९७ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

बिंबिसार

महाली लिच्छवी

कोशल का राजकुमार प्रसेनजित, कुशीनारा के मल्लों का राजकुमार बंधुल और वैशाली के गणतंत्र का राजकुमार महाली, तीनों तक्षशिला विश्व विद्यालय में सहपाठी थे। स्नातकोत्तर प्रसेनजित कोशल का राजा बना। बंधुल कोशल का प्रधान सेनापति बना और महाली वैशाली गणतंत्र के राजकुमारों, सेनानियों और सैनिकों का धनुर्विद्या-शिक्षक बना।

प्रसेनजित और बिंबिसार एक दूसरे के साले भी थे और बहनोई भी। प्रसेनजित की बहन कोशलदेवी बिंबिसार को व्याही गयी थी और बिंबिसार की बहन प्रसेनजित को। इस घनिष्ट पारिवारिक संबंध के कारण दोनों में गहरी मित्रता थी। इसी मैत्री के कारण प्रसेनजित का सहपाठी और मित्र महाली बिंबिसार का भी मित्र बना।

लिच्छवी गणतंत्र मगध का पड़ोसी देश था। दोनों में पारस्परिक मनमुटाव होने के अनेक कारण थे। एक तो यही कि गणतंत्र के निवासी राजतंत्र के निवासियों से कहीं अधिक सुखी और सुरक्षित रहते थे। शासनतंत्र में या किसी शासनाधिकारी में कोई दोष दीखे तो एक लिच्छवी नागरिक सर्वथा निडर होकर उसकी शिकायत किसी उच्चाधिकारी से कर सकता था। सुधार न हो तो उसकी चर्चा संथागार (संसद) में उठायी जा सकती थी। परंतु राजतंत्र में ऐसा नहीं हो सकता था। इसके अतिरिक्त लिच्छवी गणतंत्र की एक बड़ी विशेषता यह भी थी कि वहां की न्यायपालिका बहुत स्वच्छ, निष्पक्ष, पारदर्शी, निर्भय तथा ईमानदार थी। अपराध के संदेह में कोई व्यक्ति पकड़ा जाय तो जब तक अपराध साबित न हो जाय, तब तक उसे सजा नहीं दी जाती थी। यदि सजा देने लायक होता तो भी मामला विनिच्छय महामात्य के पास भेजा जाता था, जो अपनी ओर से स्वतंत्र जांच करता या करवाता था। उसे सही लगे तो मामला वोहारिक (व्यवहारिक) के कार्यालय में जाता था, जो कि राज्य की दंड-संहिता का जानकार होता था और वही यह निर्णय करता था कि ऐसे अपराध के लिए क्या दंड दिया जाना चाहिए। अपराधी उसके निर्णय से संतुष्ट नहीं हो तो मामला सुत्तधर (सूत्रधर) के पास जाता था जो कानून का विशष्ट मर्मज्ञ होता था। अपराधी उसके सामने अपील कर सकता था। उसके ऊपर भी अपील करनी होती तो अत्थकुलक समिति के पास जाता था, जिसके सदस्य लोक व्यवहार के सभी पक्षों में अनुभवी होते थे, जैसे कि आज कल ज्यूरी होती है। उसके निर्णय की भी अपील सेनापति से की जा सकती थी, जो कि सेना का ही नहीं, न्यायपालिका का भी उच्चतम अधिकारी होता था। उससे भी ऊपर अपील करनी हो तो उपराजा को और फिर राजा को की जा सकती थी। संथागार (संसद) के सभी सदस्य राजा कहलाते थे। याने अपने क्षेत्र के संसद सदस्य को अपील जा सकती थी। और फिर आवश्यकता हुई तो संसद को भी। इतनी गहरी और सूक्ष्म छान-बीन होने के कारण न्याय में धांधली चलने की गुंजाइश बहुत कम रहती थी, जब कि राजतंत्र में यह संभव नहीं था। वहां तो निरंकुशमनमानी चलती थी। इसलिए जनसाधारण गणतंत्र राज्य में अपने आप को अधिक सुखी और सुरक्षित महसूस करता था। राजतंत्र को सदा इस बात का भय बना रहता था कि कहीं उसकी प्रजा गणतंत्र स्थापित करने के लिए बगावत न कर दे। और जब गणतंत्र पड़ोस में ही हो तो यह खतरा और अधिक बढ़ जाता था। इसके कारण भी मनमुटाव होना स्वाभाविक था।

मनमुटाव का एक और भी बड़ा कारण था। गंगा नदी के किनारे का वह भाग जहां आगे जाकर बिंबिसार के पुत्र अजातशत्रु ने पाटलिपुत्र (पटना) नगर बसाया था, उसकी तटवर्ती भूमि विवादास्पद थी। उस पर लिच्छवियों तथा मागधों का मिला-जुला अधिकार था। उस तट पर व्यापाराना माल-असबाब से भरी हुई बड़ी-बड़ी नौकाएं लगती थीं। बिक्री के लिए आया हुआ बहुत-सा सामान यहीं उतरता था और यहां का उत्पादन आगे जाने के लिए उन नौकाओं पर चढ़ाया जाता था। माल-असबाब आने और जाने पर सरकार की ओर से चुंगी लगती थी। आने वाली नौकाएं घड़े भर-भर कर सुगंधित द्रव्य भी लाती थीं, जिनमें से कुछ यहां बिकते थे, कुछ आगे बिकते थे और कुछ पूर्व में ताम्रलिप्ति बंदरगाह से समुद्री मार्ग द्वारा विदेशों में जा कर बिकते थे, जिनके बहुत ऊंचे दाम उठते थे। ऐसे कीमती सामानों पर चुंगी बहुत अधिक थी। प्रचलन वहां का यह था कि किसी भी सामान पर लिच्छवियों ने कर ले लिया तो मागध दुबारा नहीं ले सकते थे और मागधों ने ले लिया तो लिच्छवी दुबारा नहीं ले सकते थे। लिच्छवी गणतंत्र के अधिकारी अधिक चुस्त और मुस्तैद थे। वे बहुत सुबह ऊषाकाल में ही तट पर आ बैठते थे। मगध के अधिकारी सुस्त होने के कारण देर से पहुँचते थे। अतः बहुत से माल पर लिच्छवियों को ही चुंगी मिल जाती थी, मागधी हाथ मलते रह जाते थे। यह भी दोनों के द्वेष-दौर्मनस्य का एक बहुत बड़ा कारण था।

बिंबिसार की मागधी सेना बहुत विशाल थी। बिंबिसार स्वयं भी अत्यंत रण-कुशल योद्धा था। इसीलिए सेनीय बिंबिसार कहलाता था। उसने अपने राज्यकाल में अंगराज से युद्ध करके उस जनपद को अपने अधीन कर लिया था। इसके अतिरिक्त और किसी जनपद पर उसने आक्रमण नहीं किया था। अन्य देशों के साथ सदा मैत्री संबंध बनाए रखने की ही उसकी कुशल नीति थी। उसके पुत्र अजातशत्रु ने लिच्छवियों से युद्ध करके उन्हें जीत लिया था, पर बिंबिसार ने उनसे कभी युद्ध नहीं किया। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि लिच्छवियों की सेना का आचार्य महाली उसका मित्र था जो कि समय-समय पर राजगृह आकर उससे अपने स्नेह-संबंध बनाए रखता था।

बोधि प्राप्त करने के पश्चात वाराणसी में धर्मचक्र प्रवर्तन करके गया होते हुए जब भगवान बुद्ध पहली बार राजगृह आए और बिंबिसार को इसकी सूचना मिली, तब वह अपने मित्रों,

राज्याधिकारियों तथा नगर के प्रमुख नागरिकों के साथ भगवान की अगवानी के लिए लट्ठिवन के सुप्रतिष्ठित चैत्य पर गया, जहां भगवान ठहरे हुए थे। उस समय बिंबिसार का मित्र धनुर्विद्याचार्य लिच्छवी महाली भी राजगृह आया हुआ था। अतः उन अनेक लोगों के साथ वह भी भगवान की अगवानी के लिए गया था। वहां भगवान के उपदेश सुनते-सुनते अन्य अनेकों की भांति महाली को भी वही आंतरिक अनुभूति हुई जिससे वह स्रोतापन्न हुआ। इससे निहाल हो कर वह भगवान बुद्ध का परम श्रद्धालु उपासक बन गया था और इस अनमोल उपलब्धि के लिए अपने मित्र बिंबिसार का चिर ऋणी भी।

इस घटना के कुछ समय पश्चात ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई कि सारे वज्जि प्रदेश में भीषण अकाल पड़ा। अकाल गत वर्ष भी पड़ा था परंतु इस वर्ष वर्षा हो जाने की बड़ी आशा थी। लेकिन इस बार भी अकाल पड़ने के कारण भीषण तबाही मची। भूख के मारे गांव, नगर सभी जगह हाहाकार मच गया। चारे के अभाव में बहुत बड़ी संख्या में पशुधन नष्ट हुआ। अनेक मनुष्य भी भूख के मारे तड़प-तड़प कर मरने लगे। अकाल के साथ-साथ अनेक प्रकार की भयंकर महामारियां भी फैल गयीं। इससे लोगों की समस्या और अधिक बढ़ गयी, परंतु कोई चारा नहीं था। कोई इलाज नहीं था। समृद्धि की विशालता के लिए प्रसिद्ध राजनगरी वैशाली का भी बुरा हाल था। अनेक नागरिक वैशाली छोड़ कर पड़ोसी देशों की शरण लेने चले गए थे। मोहल्ले के मोहल्ले सुनसान हो गए थे। नगर की सामान्य वीथियां ही नहीं, बल्कि सभी जनपथ, वाणिज्यपथ, राजपथ जो कि सदा जनाकीर्ण रहा करते थे, वे अब जनशून्य हो गए थे। जगह-जगह पशुओं के शव पड़े सड़ रहे थे। कहीं-कहीं लावारिश मनुष्यों के भी इक्के-दुक्के शव पड़े सड़ रहे थे। गीध, चील और कौवे उन्हें नोच रहे थे। कोई उन्हें उठाने वाला भी नहीं था। सारा नगर दुर्गंध के प्रदूषण से दूषित हो उठा था। जो थोड़े से लोग नगर में बचे थे उनको अपनी जान के लाले पड़े हुए थे। नगर की सफाई की ओर कौन ध्यान देता? दुर्गंधभरे प्रदूषण से जिनका तालमेल बैठता है वैसे प्रेतप्राणी भी वहां खिंचे चले आए। दुर्भिक्ष और महामारी के साथ-साथ इन पैशाचिक प्राणियों के उपद्रवों से भी नागरिक अत्यंत भयभीत थे, संतापित थे, संत्रस्त थे और असहाय थे। लोगों पर मानो दुःखों का पहाड़ टूट पड़ा। कहीं कोई सहायक नहीं दीख रहा था। संथागार में संसद की बैठकें होती थीं, पर किसी को इस भयंकर समस्या का कोई समाधान नहीं सूझ रहा था। कुछ प्रजाजन सांसद राजाओं पर दोषारोपण करते थे। कहते थे उनके किसी दोष के कारण प्रजा इतनी त्रस्त हुई है। सांसद हर प्रकार का प्रायश्चित करने को तैयार थे। कहीं अनजाने में कोई दोष हो गया हो तो उसका प्रक्षालन हो जाय, इस निमित्त सब के सुझाव स्वीकार करते थे। कभी कोई किसी चैत्य के देवता को बलि चढ़ा कर प्रसन्न करने का परामर्श देता था तो कभी कोई अन्य कर्मकांड पूरा करने का अथवा किसी पुजारी को बुला कर उसके द्वारा पूजा पाठ करवाने का अथवा कोई निरामिष होम या सामिष यज्ञ करवाने का परामर्श देता था। यों एक-एक कर के सबके सुझावों का प्रयोग कर लेने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। अनेक साधु-संत और बड़े नामी-गिरामी महंत-महात्मा भी इस दुरावस्था को दूर करने के लिए कुछ नहीं कर सके।

ऐसे समय आचार्य महाली को भगवान बुद्ध की याद आयी। उनके सान्निध्य में उसे कितनी अपूर्व शीतल शांति की अनुभूति हुई थी। यदि वे वैशाली पधारें तो उनके विमल विमुक्त चित्त से निकली हुई अपरिमित करुणा की किरणें वैशाली के संतप्त लोगों को मानसिक शांति प्रदान करेंगी। यह सोच कर उसने संसद को परामर्श दिया कि राज्य की ओर से भगवान बुद्ध को वैशाली पधारने के लिए आमंत्रित किया जाय। संसद की स्वीकृति मिली। महाली ने स्वयं राजगृह जाने का निश्चय किया।

महाली वैशाली के धनुर्धारी सैनिकों एवं सेनानियों को धनुर्विद्या की शिक्षा देता था। अचूक निशाना लगाने के लिए आंखों का प्रमुख प्रयोग होता है। अत्यधिक प्रयोग करते-करते महाली ने अपनी दोनों आंखें खो दी थी। लेकिन फिर भी वह इस विद्या के ऐसे अनेक गुर जानता था, जिन्हें आंख खो देने पर भी लिच्छवियों को सिखा पाता था। वे उसका बहुत उपकार मानते थे। अतः उसके लिए वैशाली नगर के पश्चिमी दरवाजे के समीप सारी सुख-सुविधाओं से परिपूर्ण एक निवास स्थान बनवा दिया था। यहीं वैशाली से श्रावस्ती तक का महापथ जाता था। उस दरवाजे से जो भी आता-जाता, उस पर एक छोटा कर लगाने की उसे छूट दे दी गयी थी। इससे उसे अच्छी आमदनी हो जाती थी। अंधा था इसलिए जहां कहीं भी आना-जाना होता, अपने साथ किसी एक सहायक को ले जाया करता था। अब उसे गणतंत्र की ओर से राजगृह जाना था। अतः उसने राजपुरोहित के पुत्र को अपने साथ ले लिया।

वह एक अनुभवी राजपुरुष था। अतः राजकीय रीति-रिवाजों को खूब समझता था। सीधे भगवान के पास जाकर उन्हें निमंत्रित करना उसने उचित नहीं समझा। यद्यपि वह जानता था कि भगवान को कहीं भी आने-जाने के लिए मगधराज की अनुमति आवश्यक नहीं थी लेकिन फिर भी मगधराज का सम्मान बढ़ाने के लिए वह पहले उन्हीं के पास गया। लिच्छवियों ने जो भेंट भेजी थी, उसे पुरोहित के पुत्र ने बिंबिसार को अर्पित की। तदनंतर महाली ने अपने आने का उद्देश्य प्रकट किया। उसने वैशाली की वर्तमान दुरावस्था बतायी और कहा कि वह भगवान बुद्ध को आमंत्रित करने आया है। मगधराज ने सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा कि वह भगवान बुद्ध के पास स्वयं जा कर उनसे प्रार्थना करें। भगवान महाकारुणिक हैं। अवश्य स्वीकार कर लेंगे। इसके लिए मेरे पास आने की आवश्यकता नहीं थी। तुम्हें वहीं जा कर उनसे मिलना चाहिए।

महाली को तो औपचारिकता पूरी करनी थी। बिंबिसार को धन्यवाद देकर वह पुरोहितपुत्र के साथ भगवान बुद्ध के पास गया। वहां उसने वैशाली की वर्तमान दुःखद स्थिति का यथातथ्य वर्णन किया और भगवान से प्रार्थना की कि भले चंद दिनों के लिए ही सही, वे एक बार वैशाली अवश्य पधारें। इससे लोगों को सांत्वना मिलेगी, शांति मिलेगी। भगवान ने मौन रह कर स्वीकृति दी।

महाली प्रसन्न हुआ। उसने यह शुभ संदेश वैशाली पहुँचाया

और इसकी सूचना बिंबिसार को देने के लिए स्वयं उसके पास गया। बिंबिसार भी अत्यंत प्रसन्न हुआ। परंतु उसके मन में एक चिंता जागी। गर्मी के दिन हैं। राजगृह से गंगातट तक का मार्ग पांच योजन लंबा है। भगवान को इस यात्रा में कोई कष्ट न हो, इसका पूरा-पूरा प्रबंध करवाया। भगवान दो दिन पश्चात प्रस्थान करनेवाले हैं, अतः कई मजदूर लगा कर सारा मार्ग साफ करवाया। उस पर पड़े कंकर-पत्थर हटवाए। जहां-जहां आवश्यकता हुई वहां-वहां बालू भी बिछवा दी। एक-एक योजन की दूरी पर विश्राम करने के लिए मंडप छवा दिए। वहां गेंदे के फूल और आम की बंदनवारें बँधवा दी। शीतल जल से भरे घड़े रखवा दिए।

भगवान बुद्ध के साथ वह स्वयं गंगा तट तक गया। वहां दो बड़ी नौकाओं को जोड़ कर उनकी सुखद यात्रा का प्रबंध करवा रखा था। भगवान सहित उनके पांच सौ भिक्षुओं को उन युग्म नौकाओं पर बने मंच पर बैठा कर वह स्वयं गंगा नदी में उतरा और गले-गले तक पानी में जाकर हाथ जोड़ कर भगवान को बिदाई देते हुए बोला – भगवान, आप शीघ्र लौटिएगा। तब तक इसी तट पर रुक कर आपकी प्रतीक्षा करता रहूंगा।

उन दिनों नदी तट पर किसी महत्वपूर्ण मेहमान की अगवानी करनी होती तो भी और उसे बिदाई देनी होती तो भी गले-गले तक पानी में उतर कर उसे सम्मान पूर्वक अगवानी और बिदाई दी जाती थी। महाराज बिंबिसार ने यही किया। इस यात्रा में भगवान को रंच भर भी कष्ट न हो, इसका उसने पूरा-पूरा ध्यान रखा। भगवान के प्रति उसके मन में असीम आदरभाव था। काशी, मगध और अंग देश का एकछत्र शक्तिशाली सम्राट होते हुए भी, जिनसे उसे अनमोल धर्मरत्न मिला था उन भगवान बुद्ध के प्रति वह अत्यंत विनम्रभाव से झुक गया था। उसका सारा अहं पिघल गया था। धर्म के प्रति और धर्मराजा भगवान बुद्ध के प्रति उसके मन में अमित कल्याणी श्रद्धा जागी थी। यह असीम श्रद्धा उसके लिए अत्यंत मंगल फलदायिनी थी।

मंगल मित्र,

सत्यनारायण गोयन्का

"तिपिटक में सम्यक संबुद्ध" की लोकप्रियता

पूज्य गुरुजी द्वारा लिखित पुस्तक 'तिपिटक में सम्यक संबुद्ध' के दोनों भाग पाठकों को बहुत रुचिकर और प्रेरणादायक सिद्ध हुए हैं। इसकी प्रशंसा में अनेक विद्वानों के लगातार पत्र आ रहे हैं। ये ग्रंथद्वय केवल बोधिगम्य ही नहीं बल्कि ऐतिहासिक तथ्यों को उजागर करने में बहुत महत्त्वपूर्ण बन गये हैं। यही कारण है कि बैंगलोर की 'महा बोधि सोसायटी' ने इसे पालि शोध विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम में शामिल कर इसे पाठ्यपुस्तक के रूप में मान्यता प्रदान की है। विपश्यी साधकों के लिए तो ये ग्रंथ अपूर्व प्रेरणास्रोत हैं ही, अन्य सुधी पाठकों के लिए उतने ही मंगलदायी हैं। इन्हें पढ़ कर अनेकानेक लोग मंगललाभी हों, यही धर्मकामना!

(विपश्यना विशोधन विन्यास)